श्रीराम-कृष्ण-काव्य

[१२ प्रकार के छन्दों-युक्त ब्रजभाषात्मक 'विलोम' काव्य]



डा० श्री[illegible]-संग्रह

'समश्लोकी मेघदूत', 'विजया-वाटिका', 'संयुक्त-वर्ण-विज्ञान', 'श्रीकृष्ण-ताण्डव स्तोत्रम्' आदि के लेखक

श्री० पं० हृषीकेश चतुर्वेदी

प्राक्कथन लेखक—

श्री० पं० हरिशंकर शर्मा, कविरत्न

प्रकाशक—

(अध्यक्ष) 'रत्नदीप' प्रकाशन,

चौबेजी का कटरा, किनारी बाजार, आगरा।

द्वितीय संस्करण | रामनवमी सं० २०११ वि० | मूल्य बारह आना

विषय-सूची

स्मरण रखिये—

किसी भी पद्य-पंक्ति को उलटा पढ़ने पर उसी के ठीक सामने की अन्य पृष्ठ वाली पंक्ति सीधी बन-जाती है।

छन्द-संख्या ५-६, ९ तथा १३ में पहली पंक्ति की उलटी सामने के पृष्ठ वाली दूसरी, तथा दूसरी की उलटी पहली है।

भूल-सुधार—छन्द सं० १८ को छन्द सं० २३ के बाद (छन्द सं० २४ के पहले) पढ़ें!

मुद्रक—राधेलाल, रंगमंच प्रेस, फुलट्टी बाजार, आगरा।



('वासुदेव' वृत्तम्)

सृष्टि - कर्त्तारकौ, भक्तभर्त्तारकौ,
तारकौ सन्ततं सत्कृतीनाम् ।
दुष्कृतामन्तकौ, विष्णु-रूपौत्विमौ,
रामकृष्णौ जयेतां जगत्याम् ॥

—हृषीकेश चतुर्वेदी

प्राक्कथन

[लेखक—हास्यरसाचार्य श्री० पं० हरिशंकर शर्मा कविरत्न]

——:X:——

श्री पं० हृषीकेश चतुर्वेदी आगरे के रससिद्ध कवि और प्रसिद्ध कला-कोविद हैं। आपने प्रायः सब ही रसों में रुचिर रचनाएँ की हैं। हास्य और व्यंग्य लिखने में तो आप सिद्धहस्त हैं। आपने हास्यरस की कितनी ही ऐसी चीजें लिखी हैं, जिन्हें पढ़-सुन कर सहृदय पाठक हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं। चतुर्वेदीजी के व्यंग्यों की मार बड़ी मीठी, मोहक और मार्मिक है। वे बातों ही बातों में ऐसी करारी चोट कर जाते हैं कि स्वयम् चोट खाने वाला भी मर्माहत होकर हँस पड़ता है। रोता-चीखता-चिल्लाता नहीं।

चतुर्वेदीजी ने 'चित्र-काव्यों' की भी सुन्दर सृष्टि की है, उनमें मस्तिष्क का कौशल बड़ा चमत्कारपूर्ण अतएव आनन्द-दायक है। आधुनिक काव्य-जगत् 'चित्र-काव्यों' का प्रशंसक हो या न हो, परन्तु चतुर्वेदीजी के चित्र-काव्य रीति-कालीन प्राचीन परम्परा की ओर बलात् आकृष्ट किये बिना नहीं रहते। वे इस दिशा की पुरानी स्मृति के शुष्क उद्यान को सरस, सुन्दर और सुहावना बना देते हैं, इन चित्र-काव्यों में कला है—कौशल है।

'श्री राम-कृष्ण-काव्य' नामक यह छोटी पुस्तक भी श्री हृषीकेश चतुर्वेदी की सूझ-बूझ का सुन्दर उदाहरण है, जैसा कि पाठक देखेंगे इसमें शब्द-कौशल और अर्थ-गाम्भीर्य्य की कितनी

प्रचुरता है। एक ओर से पढ़ने पर जो शब्द जिस भाव के द्योतक हैं, दूसरी ओर से पढ़े जाने पर वे ही दूसरे अर्थ के प्रकाशक बन जाते हैं। अर्थात् इधर से पढ़ने पर जो पंक्तियां राम-गुण-गान करती सुन पड़ती हैं, उधर से पढ़ने पर वे ही कृष्ण-कीर्तन करती दिखायी देती हैं। वस्तुतः कवि-मस्तिष्क की यह अभिनव उपज और अद्भुत उमंग है। इन छन्दों की रचना में कितना परिश्रम करना पड़ा होगा। जहाँ तक हम जानते हैं, संस्कृत-साहित्य में कई ऐसे (विलोम) काव्य हैं, परन्तु हिन्दी में, यह पहली ही रचना दीख पड़ी है। यद्यपि इस कला का संकेत महाकवि केशव की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा-प्रभा द्वारा विविध छन्दों में बहुत पहले हो चुका है।

चतुर्वेदीजी ने अपनी इस पुस्तक में कई छन्दों का निर्वाह बड़ी सफलता और सुन्दरता से किया है। साथ ही समझने की सुविधा और सरलता के विचार से छन्दों के अन्वय, भावार्थ और विशेष शब्दार्थ भी दे दिये हैं। आशा है हिन्दी संसार में इस महत्त्वपूर्ण रचना का उचित आदर-मान होगा और कविता-प्रेमी सहृदय सज्जन इससे अवश्य ही अपना मनोरञ्जन कर सकेंगे। इस प्रशंसनीय प्रयत्न के लिये हम बन्धुवर चतुर्वेदीजी को धन्यवाद और साधुवाद देते हैं।

आगरा
रामनवमी २०११ वि०

हरिशंकर शर्मा

"दो-शब्द"

साहित्य के इस भाव-प्रधान युग में वर्ण-योजन-कलात्मक पद्यों की उपेक्षा होना स्वाभाविक ही है। वर्णात्मक पद्य कृत्रिम होने के कारण, प्रायः क्लिष्ट, दुरूह तथा भाव-चमत्कृति से शून्य ही होते हैं। अप्रसिद्ध शब्दों के प्रयोग से वे क्लिष्ट, व्याकरणात्मक शिथिलता एवं नव-निर्मित शब्दों की भरमार से वे दुरूह, तथा सङ्कीर्ण-सीमाबद्ध वर्ण-योजना के कारण वे चमत्कृत-भावों से शून्य रह-जाते हैं। भाव-प्रधान काव्य में 'भावचमत्कृति' का अर्थ चमत्कार-युक्त भावों का वर्त्तमान होना है, परन्तु कलात्मक काव्य में भाव आ-जाना ही चमत्कृति है।

विद्वानों की उपेक्षा के फल-स्वरूप 'चित्र-काव्य'-प्रधान वर्णात्मक साहित्य अस्त-प्राय हो गया है। चित्र-काव्य, देखने मात्र का विषय होने के कारण, कवि-सम्मेलनों में भी नहीं सुनाया जा सकता। 'निरोष्ठ्यादि' पद्य सुनाये-जाकर थोड़ी देर का मनोरञ्जन तो करते हैं, किन्तु ऐसे पद्य बहुत ही थोड़े हैं। 'चित्र-काव्य' का प्रचार साहित्य-प्रदर्शनियों द्वारा हो भी सकता है, किन्तु उनका चलन सुचारु-रूप में अभी तक नहीं हुआ है। मेरी तुच्छ सम्मति में कलात्मक साहित्य सर्वथा उपेक्षणीय नहीं है। भाव-प्रधान काव्य में यदि माधुर्य है, तो

कलात्मक काव्य में लावण्य है। मधुर-रस के साथ कभी-कभी नमकीन स्वाद ले लेना भी अच्छा ही रहता है।

संस्कृत के एक ऐसे ही उपेक्षित-से "राम-कृष्ण" नामक 'गतागत' अथवा 'विलोम' काव्य को देखने पर, चित्त प्रस्तुत-काव्य लिखने को उत्साहित हुआ। इस काव्य का नाम, विषय तथा शैली वही है, जो उक्त काव्य की है, तथापि यह उसका अनुवाद न होकर एक स्वतंत्र रचना ही है। यह रचना विलोम-काव्य होने के कारण दोनों ओर से पढ़ी-जाती है। श्रीराम तथा श्रीकृष्ण विषयक पंक्तियाँ एक दूसरी के उलटे रूप हैं। इस विशेषता को स्पष्ट करने के लिये पंक्तियाँ प्रत्येक दो-पृष्ठों पर एक दूसरी के सन्मुख लिखदी-गई हैं। अर्थ को सरल करने के उद्देश से अन्वय, भावार्थ तथा विशेष-शब्दार्थ भी दे दिये हैं। छन्दों के लक्षण भी यथा-स्थान दिये गये हैं।

रचना 'अनन्त-चतुर्दशी' सं० २००० को प्रारम्भ की-जाकर मार्गशीर्ष कृष्ण ८, सं० २००० को समाप्त की-गई थी।

पुस्तक जैसी भी सरल या दुरूह बन सकी है, पाठकों के समक्ष उपस्थित है। आशा है, वाचक-वृन्द इतने पर भी जहाँ कठिनता का अनुभव करेंगे, वहाँ लेखक की विवशता पर उसे क्षमा करेंगे।

—हृषीकेश चतुर्वेदी

॥ श्रीराम-कृष्ण काव्य ॥

* ('इन्द्रवज्रा' छन्द)—

रामा हरैं कष्टइ तीव्र-धारा ।
हैं सोपमी, सत्य निरीह जो हैं ॥१॥

अन्वय—रामा तीव्रधारा-कष्टइ हरें, जो सोपमी हैं, जो सत्य हैं, जो निरीह हैं।

भावार्थः—सभी उपमाओं-युक्त, सत्य-रूप तथा इच्छाओं से रहित जो श्रीराम (अथवा श्रीसीता) हैं, वे हमारे भारी कष्ट को दूर करें।

विशेष शब्दार्थ—रामा = १—श्रीरामजी २—श्रीराम की पत्नी अर्थात् श्री सीताजी (जैसे, शिव की पत्नी शिवा)। तीव्रधारा-कष्टइ = वेगयुक्त प्रवाह वाले या, पैंनी धार वाले अर्थात् तीक्ष्ण कष्ट को। सोपमी = उपमाओं-सहित। निरीह = इच्छाओं से रहित।

* लक्षण :—त + त + ज + ग + ग।

जे खेल हैं नित्य कृपा-कृती के।
ते ही सहासक्ति भये नये-से ॥२॥

अन्वयः—जे कृपा-कृती के नित्य खेल हैं, तेही सहासक्ति नये-से भये (हैं)।

भावार्थ—जो कृपा करने वाले श्रीरामजी के नित्य के खेल हैं वे मनुष्य को (आसक्ति साथ में रहने के कारण) आश्चर्य्य युक्त-से दिखलाई देते हैं।

टिप्पणी—आसक्ति न रहने पर ही मनुष्य परमात्मा की लीलाओं को यथार्थ रूप में समझ सकता है।

विशेष शब्दार्थ—कृपाकृती=(१) कृपा करने वाले। (२) कृपा की आकृति वाले अर्थात् कृपा-रूप। सहासक्ति = आसक्ति (लगाव) साथ में रहने से। नये-से = अर्थात् आश्चर्य्यवत्; अदृष्ट-पूर्व ।

'राधा-व्रती' इष्ट करैं हमारा ।
हैं जो हरी, नित्य समीप सोहैं ॥१॥

अन्वय—'राधाव्रती' हमारा इष्ट करैं, जो हरी हैं, जो नित्य समीप सोहैं ।

भावार्थ—श्रीराधा ही हैं परम प्रिय जिनको तथा जो विष्णु-रूप हैं, एवं जो सदैव समीप ही सुशोभित रहते हैं (अर्थात् जो सर्वत्र विद्यमान हैं) ऐसे श्रीकृष्ण हमारा प्रिय अर्थात् मंगल करें ।

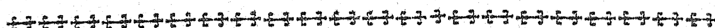
विशेष शब्दार्थ—'राधाव्रती' = श्री राधा का ही व्रत है जिनका अर्थात् श्री राधा ही परम-प्रिय हैं जिनको, ऐसे श्रीकृष्ण ।

केती कृपा-कृत्यनि हैं लखे जे ।
सेये न ये भक्ति स-हास ही ते ॥२॥

अन्वय—जे केती कृपा-कृत्यनि लखे हैं, ते ये स-हास भक्ति ही ते न सेये ।

भावार्थ—जो कितनी कृपा की-जाने पर दिखलाई देते हैं ! वे ही ये श्रीकृष्ण सहर्ष भक्ति से हम मनुष्यों-द्वारा सुसेवित नहीं हुए !!!

विशेष शब्दार्थ—कृपा-कृत्यनि कृपा के कार्यों (जैसे अर्जुन को दिव्य-दृष्टि दान आदि) से । सेये = सुसेवित हुए ।



* ('मौक्तिकदाम' छन्द)—

हुए 'करता', बस सो लख नेह ।
हिंआँ, बस केसब के, सब आँहिं ॥३॥

अन्वय—सो 'करता' नेह लख बस-हुए । हिंआं सब केसब के बस-आँहिं ।

भावार्थ—वे कर्त्ता श्रीरामजी, भक्तों का स्नेह देखकर, वश में हुए । इस संसार में सभी कार्य श्रीविष्णु (अर्थात् श्रीराम) के ही वश में हैं ।

विशेष शब्दार्थ—हिंआँ (इहाँ) = यहाँ, अर्थात् इस संसार में । आँहिं = हैं ।

* लक्षण—ज + ज + ज + ज

* ('श्येनिका' छन्द)—

है 'रसा-सुता' सुता सु 'कीर्त्ति' की ।
राम, 'सामरा' सुरेसु हैं न दो ॥४॥

अन्वय—'रसासुता' सु 'कीर्त्ति' की सुता है । सुरेसु राम, सामरा दो न हैं ।

भावार्थ—पृथ्वी की पुत्री श्री जानकीजी ही 'कीर्त्ति', की पुत्री अर्थात् श्री राधा हैं । सुरेश्वर श्री राम तथा श्री श्याम दो नहीं हैं ।

शब्दार्थ—रसा = पृथ्वी । 'कीर्त्ति' = श्री राधिका जी की माता । सामरा = साँवला ।

* लक्षण—र + ज + र + ल + ग

हने खल, सो सब तारक एहु ।
हिंआँ बसके, बस केसब आँहिं ॥३॥

अन्वय—एहु तारक सो सब खल हने । हिंआँ बसके केसब बस-आँहिं ।

भावार्थ—इन तारने वाले श्रीकृष्णजी ने सभी दुष्टों को मारा । इस संसार में रह कर ही श्रीकृष्णजी वश में आ सकते हैं ।

विशेष शब्दार्थ—एहु = इन्होंने । बस-आँहि = वश में आते हैं ।

'कीर्ति' की सुता सु-तासु सार है
दो न हैं सुरेसु राम, 'सामरा' ॥४

अन्वय—'कीर्त्ति' की सुता सु-तासु सार है । सुरेसु राम सामरा दो न हैं ।

भावार्थ—श्री राधिकाजी उन श्रीकृष्ण (अथवा श्रीजानकी) का सार-रूप हैं । सुरेश्वर श्रीराम तथा श्रीकृष्ण दो नहीं (अर्थात् एक ही) हैं ।

टिप्पणी—'सु-तासु' शब्द का भावार्थ छन्द-संख्या ३ के सम्बन्ध से 'श्रीकृष्ण' है, तथा छन्द-संख्या ४ (श्रीराम पक्ष) के सन्बन्ध से 'श्री जानकी' है ।

* ('तोटक' छन्द)

भल जीव-दया सह-साहस है ।
नव-दास सदा बन तीव्र-व्रती ॥
रन-धीर बनों वरि रामुहि सो ।
'करता' जग को; सबके निज को ॥५

अन्वयः—सह-साहस ह्वै जीव-दया भल । सदा तीव्र-व्रती नव-दास बन । सो रामुहि वरि, रन-धीर बनों, (जो) जग को 'करता' (तथा) सबके निज को (है) ।

भावार्थ—साहस-सहित ही जीव-दया अच्छी है, अतः जीव-दया का सदैव के लिये तीव्र व्रत लेकर संसार के दास बनों । श्रीराम को आदर्श रूप में चुन कर रणधीर बनों, जो जगत् के कर्त्ता तथा सबके निजके हैं ।

टिप्पणी—सह-साहस ह्वै जीव दया भल—अर्थात् दया का अर्थ कायरता नहीं है ।

विशेष शब्दार्थ—नव दास = नये, अर्थात् अभी तक यदि नहीं हो, तो अब दास बनों । वरि = वरण कर, अर्थात् चुन कर ।

* लक्षण—स + स + स + स ।

* ('मोदक' छन्द)—

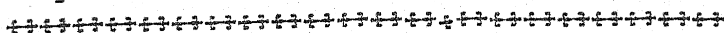
तीव्र-व्रती नव-दास सदा बन।
ह्वै सह-साहस 'यादव जी' लभ ॥
को जनिके बस ? को गज-तारक ?
सो हि मुरारि बनों वर-धी नर ॥६

अन्वय—सदा तीव्र-व्रती नव-दास बन। सह-साहस ह्वै यादव जी लभ। जन के बस को (है) ? गज-तारक को (है) ? सो मुरारि ही वर-धी नर बनों।

भावार्थ—सदा के लिये तीव्र-व्रत लेकर जगत् के दास बनों। साहस-सहित श्री कृष्ण को प्राप्त करो। भक्त के वश में कौन है ? 'गजेन्द्र' को मुक्ति देने वाला कौन है ? ऐसे उन भगवान् विष्णु ने श्रेष्ठ-बुद्धि वाले मनुष्य श्रीकृष्ण का रूप धारण किया।

विशेष शब्दार्थ—जनि (जन)=भक्त। वर-धी=सुधी अर्थात् श्रेष्ठ बुद्धि वाला।

* लक्षण—भ + भ + भ + भ



('मौक्तिकदाम' छन्द)—

सजे व्रतु जीव-दया विभु एहु।
जराजर, आनद-नंदन हीय ॥७

अन्वयः—एहु जराजर, हीय आनन्द-नंदन विभु, जीव दया-व्रतु सजे।

भावार्थ—इन पुराण-पुरुष, अजर तथा हृदय को आनन्द-द्वारा प्रसन्न करने वाले प्रभु श्रीराम ने भी जीव-दया का व्रत लिया।

विशेष शब्दार्थ—जराजर=जर (वृद्ध, अर्थात् पुराण-पुरुष) तथा अजर अर्थात् जो कभी वृद्ध अर्थात् शिथिल नहीं होते। सजे=सजाया अर्थात् धारण किया।

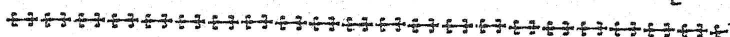
हुए कल-बालक तारक चार।
हुए कुल-पालकु तारक चार ॥८

विषय—श्रीराम-जन्म

अन्वय—तारक चार कल-बालक हुए। तारक चार कुल-पालकु हुए।

भावार्थ—जगत् को तारने वाले श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न नामक चार कुल-पालक, सुन्दर बालकों ने जन्म लिया।

विशेष शब्दार्थ—कल=सुन्दर।



हुए भुवि यादव जी तु व्रजेस ।
यही नद-नंदन, आरज-राज ॥ ७ ॥

अन्वय—भुवि, तु यही आरज-राज, नद-नंदन, व्रजेस, यादवजी हुए ।

भावार्थ—पृथ्वी पर इन्हीं आर्य-राज, नन्द-नन्दन, व्रज-पति यदु-कुल-भूषण श्रीकृष्ण ने अवतार लिया ।

विशेष शब्दार्थ—भुवि=पृथ्वी पर । आरज=आर्य ।

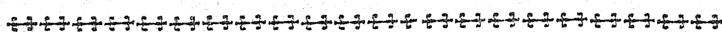
रचा 'करता' कल-बालक एहु ।
रचा 'करता' कुल-पालकु एहु ॥ ८ ॥

विषय—श्रीकृष्ण-जन्म ।

अन्वय—'करता' एहु कल-बालक रचा । 'करता' एहु कुल-पालकु रचा ।

भावार्थ—'कर्त्ता' ने यह कुल-पालक, सुन्दर बालक श्रीकृष्ण रचा ।

विशेष शब्दार्थ—एहु=यह भी ।



धरा-प अकारन नाहक भीत ।
दयाकर, कारक याद न कीन ॥ ६ ॥

विषय—विश्वामित्र जी की माँग पर दशरथ जी का पुत्र-मोह ।

अन्वय—धराप अकारन नाहक भीत (हैं); दयाकर, कारक याद न कीन ।

भावार्थ—राजा दशरथ जी अकारण ही व्यर्थ भय मान रहे हैं (कि रामजी अभी बालक हैं । वे विश्वामित्र जी के यज्ञ की रक्षा कैसे कर सकेंगे ? तथा, कहीं कोई राक्षस उन रामजी को हानि न पहुँचा दे) । वे (दशरथ जी) याद नहीं कर रहे हैं कि श्रीराम जी दया की खान तथा जगत् के कर्त्ता हैं (उन्हें कौन मार-सकता है ?) ।

विशेष शब्दार्थ—धरा-प=भूप ।

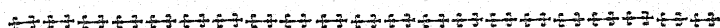
लिआ सर पानि, महै, हरि-रामु ।
नसै रिसु-आतुर 'दानव-तीय' ॥१०॥

विषय—ताटिका-बधा ।

अन्वय—हरि-रामु, महै, पानि सर लिया (कि) रिसु-आतुर 'दानव-तीय' नसै ।

भावार्थ—विष्णु-रूप श्रीराम ने, विश्वामित्र के यज्ञ में बाण हाथ में लिया, जिससे कि क्रोध में आतुर दानव-स्त्री 'ताटिका' नष्ट हो जावे ।

विशेष शब्दार्थ—लिया=लिआ । सर (शर)=बाण । महै=यज्ञ में (मह=यज्ञ) । रिसु (रिस) क्रोध ।



न कीन दयाकर, कारक याद।
तभी कहना नर का, अपराध ॥ ९ ॥

अन्वय—दयाकर, कारक याद न कीन, तभी नर का कहना अपराध (है)।

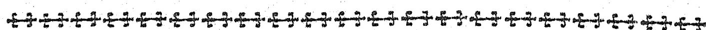
भावार्थ—श्रीकृष्ण को नहीं समझा कि वे दया की खान तथा जगत् के कारण-स्वरूप हैं। यह बात भूल कर ही जो मनुष्य उन्हें दोष लगाता है, उसका वह कथन (दोषारोपण) अपराध-रूप ही है।

मुरारिह है मनि-पारस, आलि।
यती बन, दारतु आसुरि-सैन ॥१०॥

अन्वय—आलि! मुरारिह पारस-मनि है (सो) यती बन, आसुरि-सैन दारतु (है)।

भावार्थ—एक सखी दूसरी से कह-रही है कि "हे सखी! मुरारि ही पारस-मणि है। वह यती बन कर आसुरी सेना का विदारण करता है।

विशेष शब्दार्थ—आसुरि-सैन (१) काम क्रोधादि आसुरी-वृत्तियों की सेना (२) राक्षसों की सेना।



सराहँइ सीयइ आनन-चार ।
स-तोस रही-वरि रामुहि सीय ॥११॥

विषय—श्री सीताजी का श्रीराम जी को वरण करना।

अन्वय—सीयइ आनन-चार सराहँइ। सीय रामुहि स-तोस वरि-रही।

भावार्थ—श्री सीताजी को चारमुख वाले ब्रह्मा जी सराहते हैं। श्री जानकी जी श्रीराम जी को सन्तोष-सहित वर रही हैं।

विशेष शब्दार्थ—आनन-चार=(१) चतुरानन ब्रह्माजी (२) चारु (सुन्दर) मुख [अर्थात् श्री जानकी जी के सुन्दर मुख को लोग सराह रहे हैं]।

पिता, बस हार, दिआ वन-दान।
दयानिध ने बन कीन पयान ॥१२॥

विषय—वन-गमन।

अन्यय—पिता, बस हार, वन-दान दिया। दयानिधि ने बन पयान कीन।

भावार्थ—पिता (राजा दशरथ जी) ने अपना वश कैकेयी को हार कर, अर्थात् कैकेयी के वश में होकर राम जी को वन-दान दिया। अतः, दयानिधि श्रीराम जी ने वन को प्रयाण किया।

विशेष शब्दार्थ—बस हार=विवश होकर। दिआ=दिया। पयान=गमन।

रचा, नन, आइ यसी इहँ रास।
यसी हि मुरारि, वही रस-तोस ॥११॥

अन्वय—यसी नन इहँ आइ रास रचा। यसी मुरारि हि, वही रस-तोस (है)।

भावार्थ—यशस्वी श्रीकृष्ण ने निश्चय ही, यहाँ (इस संसार में) आकर रास रचा। वे यशस्वी श्रीकृष्ण ही हैं। वेही रससे सन्तुष्ट होते हैं।

विशेष शब्दार्थ—यसी=यशस्वी। नन (ननु)=निश्चय करके। रस-तोस=रसिक (रस से सन्तुष्ट होने वाले; जैसे आशुतोष=शीघ्र सन्तुष्ट होने वाले)।

न दानव आदि रहा सव-तापि।
न यापन कीन-बने 'धनि'-याद ॥१२॥

अन्वय—सव-तापि दानव, आदि न रहा। 'धनि'-याद (में) यापन न कीन बने !!!

भावार्थ—यज्ञों को सन्तापित करने वाला दानव आदिक कोई भी दुष्ट (श्रीकृष्ण जी का अवतार होने से) जीवित नहीं रहा। आश्चर्य्य है कि, ऐसे धनी के स्मरण करने में समय व्यतीत-किये नहीं बनता !!!

विशेष शब्दार्थ—सव—यज्ञ। धनि—स्वामी।

न 'सीय-प' पीन लखे नर-नाह ।
न चीनत पूतइ ये तब आजु ॥१३॥

विषय—वन-गमन पर दशरथ का पुत्र-मोह ।

अन्वय—नर-नाह सीय-प पीन न लखे, तब ये आजु पूतइ न चीनत ।

भावार्थ—राजा दशरथ जी ने सीता जी के पति श्रीराम को प्रवीण अथवा सम्पन्न नहीं समझा, तभी ये आज अपने पुत्र को पुत्र-मात्र ही समझ-रहे हैं उन्हें यथार्थ (सर्वशक्तिमान्) रूप में नहीं पहचान रहे हैं ।

विशेष शब्दार्थ—सीय-प—श्रीसीताजी के पति श्रीराम । पीन—(१) प्रवीण (२) सम्पन्न । नर-नाह = मनुष्यों के नाथ अर्थात् राजा । चीनत पहचानते ।

रहा नव खेवनहार मनाय ।
"बना जग कारन तू 'करता' सु ॥१४॥

विषय—केवट-प्रसंग (१४, १५, १६) ।

अन्वय—नव खेवनहार मनाय-रहा (कि) तू जग-कारन सु-करता बना ।

भावार्थ—नया केवट (निषाद) श्रीराम को मनाने लगा कि "तू जगत् का कारण तथा कर्त्ता बना-हुआ है···

विशेष शब्दार्थ—नव खेवनहार = नया केवट निषाद (तथा पुराने केवट श्रीराम) ।

जु आवत ये इत 'पूतन' चीन।
हना, रन खेल न, पी पयसीन ॥१३॥

विषय—पूतना-वध।

अन्वय—जु, ये 'पूतन' इत आवत चीन (सोई ताहि) रन न खेल (वरन्) पयसीन पी, हना।

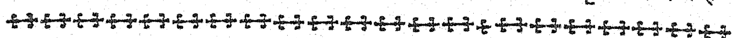
भावार्थ—जैसे ही इन श्रीकृष्ण ने समझ-लिया कि 'पूतना' इधर ही आ रही है, त्योंही उसको रण के विना ही, केवल स्तनों को पीकर मार-डाला।

विशेष शब्दार्थ—पयसीन = पयस्विनियों अर्थात् स्तनों को।

य नाम रहा नव-खेवनहार।
सु-तारक तू; नर कागज़-नाव ॥१४॥

अन्वय—य नाम नव-खेवनहार रहा। तू सु-तारक; नर कागज-नाव (है)।

भावार्थ—यह श्रीकृष्ण-नाम ही नया केवट है [पुराना केवट श्रीराम-नाम था, क्योंकि श्रीकृष्णावतार श्रीरामावतार से पीछे हुआ है]। हे भगवन्! तू तारने वाला है, तथा मनुष्य कागज की नाव के समान है।



"दिया, धनि ! 'गौतम-तीअइ' तारि ।
सुना रज को वर कौतुहलीअ ॥१५॥

अन्वय—"धनि ! 'गौतम-तीयइ' तारि-दिया । रज को वर-कौतुहलीय सुना ।

भावार्थ—केवट कहता है कि "धन्य है ! (अथवा हे धनी !) आपने 'अहल्या' को तार दिया । मैंने आपकी चरण-रज को बड़ा ही कौतूहल-पूर्ण सुना है···

वि० श०—कौतुहलीय=कौतुक-पूर्ण ।

"करावहु ये कब-नों, हरि-रामु !
स-पानिय नीरज ते नव पाय" ॥१६॥

अन्वय—हे हरि-रामु ! ये पाँय स-पानिय नीरजते नव कब-नों करावहु ?

भावार्थ—निषाद प्रार्थना करता है कि, "हे विष्णु-रूप रामजी ! आप अपने ये चरण पानी से धुलवा कर कमल से भी अधिक नये (अर्थात् उजले) कब कराइयेगा ?" अथवा अपने ये चरण पानी से विना रज के (नी+रज) कब कराइयेगा ?"

वि० श०—कब-नों (कब-लों)=कब तक । नीरज=(१) कमल (२) विना रज के । पाय=पाँव ।

रिताइ, यती ! मत गौ-निध-यादि ।
अलीह तु कौरव को जर-नासु ॥ १५ ॥

अन्वय—यती ! गौनिध-यादि मत रिताइ । अलीह कौरव को तु जर-नासु ।

भावार्थ—हे यती ! श्रीकृष्ण ! गो-धन (गौओं रूपी धन) की स्मृति को रीता मत करो, अर्थात् भूलो मत । श्रीराधा जी के इच्छुक श्रीकृष्ण कौरवों की तो जड़ के नाशक ही हैं ।

विशेष शब्दार्थ—रिताइ = रीता कर; समाप्त कर । अलीह = अलि (सखी) श्रीराधा में है ईहा (इच्छा) जिन की (जैसे निरीह = नहीं है इच्छा जिनको) । जर-नासु = जड़ को ही नष्ट करने के इच्छुक ।

मुरारि हनों 'बक' येहु वराक ।
य पावन तेज रनीयनि-पास ॥ १६ ॥

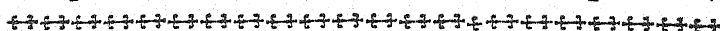
विषय—'बकासुर'-बध ।

अन्वय—मुरारि येहु वराक 'बक' हनों । य पावन तेज रनीयनि-पास (है) ।

भावार्थ—श्रीकृष्ण ने बेचारा यह 'बकासुर' भी मार-दिया । यह पवित्र करने वाला तेज, रणी अर्थात् वीरों के पास ही होता है (कायरों के पास नहीं) ।

विशेष-शब्दार्थ—वराक = बेचारा । रनीयनि = रणी अर्थात् वीरों के ।

टिप्पणी—पावन अर्थात् पवित्र करने वाला तेज; क्योंकि श्री कृष्ण जी के दर्शन जिस असुर को भी होगये, वही पवित्र होगया (चाहे मरकर ही सही) ।



गुना 'अलिका-पुरि' ने भुवि-थान।
रहे हिंय सो नर सोरन-सैल ॥ १७ ॥

अन्वय—'अलकापुरि' ने भुविथान गुना, हिंय सो सोरनसैल नर रहे।

भावार्थ—कुबेर जी की 'अलकापुरी' में भी इस पृथ्वी नामक स्थान (के महत्त्व) पर विचार हुआ, जहाँ उन श्रीराम-जैसे, स्वर्ण-पर्वत ('सुमेरु') के समान तेज वाले मनुष्यों ने निवास किया है।

विशेष-शब्दार्थ—गुना = विचारा। सोरन-सैल = स्वर्ण-पर्वत, सुमेरु अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी। हिंया = यहाँ।

सु-बेर चखे 'सबरी' सब हेर।
चखैं सनमानत सो हिय-हार ॥ १८ ॥

विषय—'शबरी'-प्रसंग।

अन्वय—'सबरी' ने सब सु-बेर हेर चखे। हिय-हार सो सनमानत चखैं।

भावार्थ—'शवरी' ने सभी अच्छे-अच्छे बेर देकर चख-लिये। हृदय को हरने वाले श्रीराम जी उन्हीं (चक्खे-हुए जूठे बेरों) को, सम्मान-सहित, चखते हैं।

विशेष-शब्दार्थ—सनमानत = सम्मान करते हुए। हिय-हार = (१) हृदय के हार (माला) अर्थात् अत्यन्त प्रिय (२) मनोहर।

नथा विभु ने रिपु 'कालिअ'-नागु ।
लसै नर सोरन-सो यहिं हेर ॥ १७ ॥

विषय—कालिय-दमन ।

अन्वय—विभु ने रिपु 'कालिय'-नाग नथा । हेर, सोरन-सो नर यहिं लसै ।

भावार्थ—प्रभु श्रीकृष्ण ने वैरी 'कालिय-नाग' को नाथा । देखो, ऐसा स्वर्ण-सा ("सोना-सा सलोना") मनुष्य श्रीकृष्ण यहीं पर सुशोभित हो रहा है ।

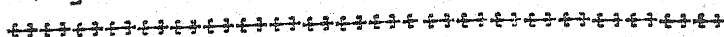
विशेष-शब्दार्थ—नथा = नाथा ।

रहे बसरी–बस खेचर–बेसु ।
रहा यहि सो तन मानस खैंच ॥ १८ ॥

अन्वय—बसरी-बस खेचर-बेसु रहे । सो यहि तन मानस खैंच-रहा (है) ।

भावार्थ—बाँसुरी के वश में आकाशचारी-वेश रखने वाले (पच्ची अथवा देवता) रहे । वही वंशी-वाला यह श्रीकृष्ण तन तथा मन को आकर्षित कर-रहा है ।

विशेष-शब्दार्थ—बसरी = बाँसुरी । खेचर-वेसु = नभचर-(आकाश चारी) वेश धारण करने वाले, पच्ची अथवा देवता । मानस = मन ।



लगै, अलि ! 'सूपनखा' सुर-तीय ।
रही, अथ, नाक-विना खिसयाहि ॥ १६ ॥

विषय—शूर्पणखाप्रसङ्ग ।

अन्वय—अलि ! 'सूपनखा' सुरतीय लगै । अथ, नाक-विना खिसियाहि-रही ।

भावार्थ—एक स्त्री दूसरी से कह-रही है कि, "हे सखी ! सूप-नखा ऐसी सुन्दर लग रही है, जैसे देवाङ्गना । इसके पश्चात् वह नाक के विना खिसियाने लगी ।"

विशेष-शब्दार्थ—अलि != हे सखी ! सूपनखा = शूर्पणखा । अथ = इसके पश्चात् ।

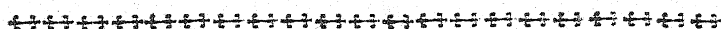
हने 'खर' सो, सर मार, स-हास ।
गयो-नस 'दूसन' मारगु-हीन ॥ २० ॥

विषय—'खर' तथा 'दूषण' का वध ।

अन्वय—सो 'खर' स-हास सर मार, हनें । मारग-हीन 'दूसन' नस-गयो ।

भावार्थ—वह 'खर' नामक राक्षस भी श्रीराम ने बाण मार कर, मारडाला । कुमार्गगामी 'दूषण' नामक राक्षस भी इसी प्रकार नष्ट होगया ।

विशेष-शब्दार्थ—सर (शर) = बाण । मारगहीन = हीन अर्थात् बुरे मार्ग पर चलने वाला अतः, सुमार्गरहित ।



यती रसु-खान, पसू लिअ गैल ।
हियां, सखि ! नाविक, नाथ अहीर ॥ १६ ॥

विषय—गोचारण।

अन्वय—यती, रसखान पसू गैल लिय। सखि ! हियाँ नाविक अहीर-नाथ (हैं)।

भावार्थ—यती, रस के खान श्रीकृष्ण, पशुओं को मार्ग में लिये हुए हैं। हे सखी ! इस व्रज की नाव के खेने वाले, अहीरों के नाथ, श्रीकृष्ण-कन्हैया ही हैं।

विशेष शब्दार्थ—पसू (पशु) = श्रीकृष्ण के पशु कौन ?—गाय, बछड़े

स-हास 'रमा-रस' सों रख नेह ।
नहीं गुर-मानस दूसन-योग ॥ २० ॥

अन्वय—'रमा-रस' सों स-हास नेह रख। गुरु-मानस दूसन-योग नहीं (हैं)।

भावार्थ—लक्ष्मी-रूपा श्री राधिका में रुचि रखने वाले श्रीकृष्ण से स-हर्ष स्नेह रख। महामना अथवा बड़े-लोग दोष दिये-जाने के योग्य नही हैं (क्योंकि, उनके कार्यों का यथार्थ रहस्य हम साधारण-मनुष्य नहीं समझ-पाते)।

विशेष-शब्दार्थ—स-हास = स-हर्ष । गुर-मानस = (१) बड़े मनवाले (२) बड़े मनुष्य (मानस = १ मानुष २ मन)।

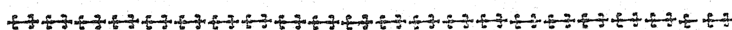
दोहा—हनत कि सर हरि, 'हरन-खल'
मना लेइ सो नाम ।
'लछन' जोर उचरइ तुरतु,
मरा सो हि सो याम ॥ २१ ॥

विषय—मारीच–वध ।

अन्वय—हरि कि सर हनत (कि) 'हरिन–खल', मना सो नाम लेइ । 'लछन' जोर उचरइ तुरतु सो याम हि सो मरा ।

भावार्थ—श्रीराम जी ने कि तो बाण मारा, कि दुष्ट हरिण रूप 'मारीच' वह राम–नाम मन में लेने लगा, तथा ज़ोर से "लक्ष्मण !" कह कर उसी समय मर गया ।

विशेष-शब्दार्थ—मना = मन में । सो हि = वही । सो याम = उसी प्रहर में, अर्थात् उसी समय ।



दोहा—लख नर-हरि, हर सकित नह,
मना सोइ ले नाम ।
तुरतइ, रच उर, जो न छल,
मया सोहि सो राम ॥ २२ ॥

अन्वय—हर, नर-हरि लखि, सकित नहिं; मना सोइ नाम ले । जो छल न रच (तो) तुरतइ सो मया राम सोहि ।

भावार्थ—श्री शिव, नर-रूप में विष्णु भगवान् को देखकर शंकित नहीं हुए कि ये श्रीकृष्ण विष्णु नहीं हैं । अतः, वे (श्री शिव) मन में वही श्रीकृष्ण-नाम लेने लगे । हे मनुष्य ! जो तू हृदय में छल न रचै, अर्थात् हृदय में छल को न रमावै, तो शीघ्र ही वह श्रीकृष्ण जी तुझे माया में रमें-हुए सुशोभित दीख-सकते हैं ।

विशेष-शब्दार्थ—नह=नहीं । मया=माया । सोहि=सुशोभित हैं । राम=रमे-हुए रूप में ।

('मौक्तिक-दाम' छन्द)—

लिश्रा यति-बेस तभी 'असुरेसु' ।
उठाय-पलाश्र सु-आसुहि सीय ॥ २३ ॥

विषय—सीता-हरण ।

अन्वय—तभी 'असुरेस' यति-बेस लिया । सीय सु-आसुहि उठाय-पलाश्र ।

भावार्थ—तभी राक्षस-राज रावण ने तपस्वी का वेश धारण किया, और वह श्रीजानकी को शीघ्र ही उठाकर भाग-गया ।

विशेष-शब्दार्थ—पलाश्र=भागा ।

* ('स्रग्विणी' छन्द)—

ईस है कें, पगो सीय-प्रेमें यही ।
सीय, भू की सुता, ताहि की जानु-भा ॥ २४ ॥

अन्वय—यही, ईस है कें, सीय-प्रेमें पगो ?—भू की सुता सीय ताहि की जानुभा (है) ।

भावार्थ—प्रश्नः— यह श्रीराम ईश्वर होकर एक स्त्री सीता के प्रेम में पगा हुआ है (जो कि वह, उसे वन-वन ढूँढ़ता फिर रहा है) ?

उत्तर—पृथ्वी की पुत्री श्री सीताजी उन्हीं श्रीराम की जानुओं पर प्रकाशित होने वाली अर्थात् पतिव्रता पत्नी है । अतः, उनका भी उसके प्रेम में पगना स्वाभाविक ही है ।

विशेष-शब्दार्थ—ताहि की=उन्हीं की (अर्थात्, वह साधारण स्त्री नहीं है, पूर्ण पतिव्रता है तथा, उन्हीं की अर्थात् माया-स्वरूपिणी है) जानु-भा=जानुओं का प्रकाश-स्वरूप अर्थात् जानुओं पर सुशोभित होने वाली (पत्नी)

* लक्षण—र+र+र+र ।

'सुरेसु'-अभीत सबै तिय, आलि !
यसीहि सु-आसु अलाप, य ठांउ ॥ २३ ॥

अन्वय—आलि ! सबै तिय 'सुरेसु'-अभीत (हैं)। यसीहि य ठाँउ सु-आसु अलाप।

भावार्थ—हे सखी ! आश्चर्य्य है कि, सभी स्त्रियाँ सुरेश (श्रीकृष्ण) से निर्भय हैं; वे इस व्रज-भूमि में उन यशस्वी से झट ही बात कर-लेती हैं !!।

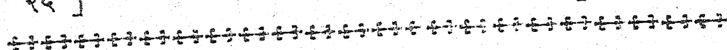
विशेष-शब्दार्थ—यसी=यशस्वी । य ठाँउ=इस व्रज-स्थान में। आसु=शीघ्र । अलाप=बातचीत करना।

हीय में प्रेयसी 'गोप' कें है सई।
'भानुजा' की हिता तासुकी भूयसी ॥ २४ ॥

अन्वय—'गोप' कें हीय में प्रेयसी है सई। 'भानुजा' की हिता तासु की भूयसी (है)।

भावार्थ—गोपालक श्रीकृष्ण के हृदय में प्रियतमा अवश्य है। श्री यमुनाजी की हिता वह राधा ही उनकी बहु-मान्या है।

विशेष-शब्दार्थ—है-सई=अवश्य है। 'भानुजा' की हिता=अर्थात्, सूर्य-पुत्री यमुना जी से उन्हें बहुत हित है, क्योंकि वहीं उन्हें जल भरना, जल-क्रीड़ा करना तथा रास रचाया-जाना अच्छा लगता है। भूयसी=बहुमान्या।



('मौक्तिकदाम' छन्द)—

रहे-बस 'केसव' के हिय कीसु।
य लाइक 'अंजनि' को हिय-हार ॥ २५ ॥

विषय—हनुमान्-मिलन।

अन्वय—'केसव' के हिय कीसु बस-रहे। य लाइक 'अंजनि' को हिय-हार (है)।

भावार्थ—विष्णु-रूप श्रीराम के हृदय में वानर (श्रीहनुमान्) बस-गये। यह योग्य व्यक्ति हनुमान् ही माता-अंजनि' के हृदय का हार है

बिशेष-शब्दार्थ—कीसु (कीश)=बन्दर। लाइक=योग्य। हिय हार=(१) हृदय का हरण करने वाला। (२) हृदय का हार अर्थात् माला (अर्थात्, अत्यन्त प्रिय)।

रची 'यति' ने भुवि हेल स-हास।
जरा, सर सें दिय बालिहि मार ॥ २६ ॥

विषय—बालि-वध।

अन्वय—'यति' ने भुवि स-हास हेल रची। जरा, सर में 'बालिहि' मार-दिया।

भावार्थ—यती श्रीराम ने पृथ्वी पर सहर्ष लीला रची। 'बालि' को उन्होंने तनिक बाण से ही मार-दिया।

विशेष-शब्दार्थ—हेल=खेल; लीला। जरा (ज़रा)=तनिक। सर (शर)=बाण।

सुकीयहि के बस 'केसब' हेर ।
रहा यहि को निज अंकइ लाय ॥ २५ ॥

अन्वय—'केसब' सुकीयहि के बस हेर । (वह) यहि को निज अंकइ लाय-रहा ।

भावार्थ—श्री विष्णु-रूप कृष्ण जी को *'सुकीयहि' के वश में देखो । यह श्रीकृष्ण उसको अपने हृदय से लगा रहे हैं ।

*टिप्पणी—सुकीयहि =(१) 'स्वकीय', अर्थात् पतिव्रता स्त्री के वश में भगवान् भी रहते हैं । (२) स्वकीय अर्थात् निज-जन (३) अच्छे कार्य किये हैं जिन्होंने अर्थात् सुकर्मी (सु+कीय) । (४) स्वकीया = उनकी ही अपनी अर्थात् श्रीराधिका जी ।

विशेष-शब्दार्थ—यहि को = इस, अर्थात् पतिव्रता को, निज-भक्त को, सुकर्मी को, अथवा श्रीराधिका को । (अंक में ला रहे, अर्थात् अपना-रहे हैं) ।

सहास लहे विसु ने तिय-चीर ।
'रमाहि लिवाय दिसें "रस-राज" ॥ २६ ॥

विषय—चीर-हरण ।

अन्वय—विसु ने स-हास तिय-चीर लहे । "रस-राज" 'रमा' हि लिवाय दिसें ।

भावार्थ—प्रभु श्रीकृष्ण ने सहर्ष, स्त्रियों के वस्त्र प्राप्त कर-लिये, अर्थात् अपने अधिकार में ले-लिये । फिर, वे रस-राज घनश्याम ही रमा-रूप राधा जी को साथ लेकर दीखने-लगे, अर्थात् दर्शन देने लगे ।

विशेष-शब्दार्थ—लिवाय = लिवा कर; साथ लेकर । दिसें = दीखते हैं ।

सुना इक 'लंक-पजारक' नाम ।
य कीसु सु-'सीय'-सनेसइ देय ॥ २७ ॥

विषय—लंका-दहन तथा सीता-सन्देश-दान ।

अन्वय—इक 'लंक-पजारक' नाम सुना । य कीसु सु-'सीय'-सनेसइ देय ।

भावार्थ—एक, 'लंका-जलाने वाला' ऐसा नाम सुना गया । इस वानर हनुमान् ने ही श्रीसीता का शुभ सन्देश भी दिया ।

विशेष शब्दार्थ—पजारक=जलाने वाला । य=यह । सु=शुभ । सनेस=सन्देश ।

यजा सिव सो हरि-रामु यतीस ।
रहे-कर सागर पार सु-हीय ॥ २८ ॥

विषय—श्रीरामेश्वर-पूजन तथा समुद्र-तरण ।

अन्वय—यतीस हरि-रामु सो सिव यजा । सु-हीय सागर पार कर-रहे ।

भावार्थ—यतियों के ईश्वर विष्णु-रूप श्रीराम ने उन श्री रामेश्वर नाम वाले शिव का पूजन किया । फिर, सुन्दर हृदय के साथ अर्थात् उत्साह-युक्त हृदय से वे समुद्र को पार करने लगे ।

विशेष शब्दार्थ—यजा=पूजा; पूजन किया ।

मना ! कर जाप कलंकइ नासु ।
य देइ सनेस यसीसु सुकीय ॥ २७ ॥

अन्वय—मना ! जाप कर कलंकइ नासु । य यसीसु सुकीय सनेस देइ ।

भावार्थ—हे मन ! ऐसे श्री कृष्ण-नाम का जप करके कलंक को नष्ट कर । यह यशस्वियों का स्वामी श्रीकृष्ण अपना सन्देश 'गीता'-रूप में, स्वयं ही देता है ।

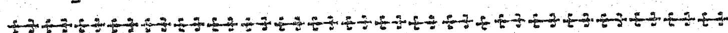
विशेष-शब्दार्थ—नासु = नष्ट कर । यसीसु = यशियों (यशस्वियों) का स्वामी । सुकीय (स्वकीय) = अपना ।

स-तीय मुरारिह सो बसि-जाय ।
यही सुर पार-ग, सारक हेर ॥ २८ ॥

अन्वय—सो मुरारिह स-तीय बसि-जाय । यही सुर पार-ग, सारक हेर ।

भावार्थ—वह मुरारि ही राधाजी के सहित हृदय में बस जावे । इसी देवता को अन्तर्यामी तथा सार-रूप है, (ऐसा) देखो ।

विशेष शब्दार्थ—तीय = स्त्री (राधाजी) । सारक = सार (जैसे, बालक = बाल) । हेर = देख । पार-ग = पारंगत ।



मया-बस राम सुहाँइ न कान।
रहा नर तारनहार न चीन ॥ २९ ॥

अन्वय—मया-वस राम कान न सुहाँइ। नर तारनहार न चीन रहा।

भावार्थ—माया के वश में होकर मनुष्य को 'राम' शब्द कान से अच्छा नहीं लगता, (अथवा) माया के वश में होकर मनुष्य को न राम सुहातेहैं, न 'कान' (श्रीकृष्ण)। मनुष्य अपने तारने वाले भगवान् को नहीं पहचान रहा है (या) मनुष्यों का तारने वाला पहचान में नहीं आरहा है।

विशेष-शब्दार्थ—मया=माया। कान=(१) कानों कों (२) कान्ह, श्री कृष्ण।

दिया, कर तान, सु-'सेसुहि' बान।
लहे, रन की भुवि, सो अनजान ॥ ३० ॥

विषय—श्री लक्ष्मण के 'शक्ति' लगना।

अन्वय—कर तान, सु-सेसुहि बान दिया। सो रन की भुवि अनजान लहे ॥

भावार्थ—(मेघनाद ने) हाथ से तान कर शेषावतार-रूप लक्ष्मण जी के शक्ति बाण मारा। वे रण-स्थल में अज्ञान (ज्ञान-शून्य) अर्थात् अचेत पाये-गये।

विशेष-शब्दार्थ—अनजान=अजान, ज्ञान-शून्य या चेतना-हीन। लहे=प्राप्त-किये गये; मिले।



'कान' इहाँ सुमरा सब याम ।
न चीन-रहा नर तारनहार ॥ २६ ॥

अन्वय—इहाँ 'कान' सब याम न सुमरा । नर तारनहार न चीन-रहा ।

भावार्थ—मनुष्य ने इस संसार में कन्हैया का स्मरण आठौ पहर नहीं किया । वह अपने तारने वाले को नहीं पहिचान रहा है ।

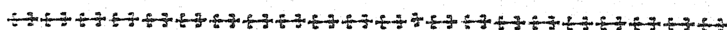
विशेष-शब्दार्थ—सब याम=आठौ याम । चीन रहा=पहिचान में आरहा ।

न वाहि सु-'सेसु', न 'तारक' यादि ।
न जानअ सो विभु की नर-हेल ॥ ३० ॥

अन्वय—न वाहि 'सु-सेसु', न 'तारक' यादि (है) सो विभु की नर-हेल न जानअ ।

भावार्थ—न उसे (अर्थात् मनुष्य को) यह स्मरण है कि बलराम जी मनुष्य नहीं, वरन्-शेषावतार हैं, और श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य नहीं, वरन् जगत् के तारने वाले हैं । वह मनुष्य प्रभु, की नर-लीला को नहीं जानता ।

विशेष-शब्दार्थ—वाहि=उसे । सेसु=शेष । जानय=जानता । हेल=खेल; लीला ।



लिआ कर, भारि-गिरी हनुमान ।
य जात, न जान जहै 'हरि-भाय' ॥ ३१ ॥

विषय—द्रोण-गिरि उठाया जाना ।

अन्वय—हनुमान भारि गिरी कर लिया । य जात, 'हरिभाय' जान न जहै ।

भावार्थ—हनुमान जी ने 'द्रोण-गिरि'-नामक भारी पर्वत हाथ में इसलिये लिया, कि इसके जाने पर श्रीराम के भाई लक्ष्मण जी प्राण-त्याग नहीं करेंगे ।

विशेष-शब्दार्थ—गिरी (गिरि)=पर्वत । य जात=यह जाते हुए अर्थात् इसके जाने पर । न जान जहै=प्राण नहीं छोड़ें । हरि-भाय=श्रीरामजी के भाई, लक्ष्मण जी ।

स-तोस दया-धनि-याद न कीन ।
न मानस में सनमान सु-तासु ॥ ३२ ॥

अन्वय—स-तोस दया-धनि-याद न कीन, न सु-तासु मानस में सनमान (है) ।

भावार्थ—(तूने) सन्तोष के साथ, दया के धनी श्रीरामजी का स्मरण नहीं किया, न मन में उनके प्रति सम्मान ही रक्खा !

विशेष शब्दार्थ—मानस=मन ।

न मान हरी गिरि-भारक, आलि !
य भारिह है, जन जानत जाय ॥ ३१ ॥

विषय—गोवर्द्धन-धारण ।

अन्वय—आलि ! हरी गिरि-भारक न मान । य भारिह है, जाय जन जानत (हैं) ।

भावार्थ—हे सखी ! श्रीकृष्ण ने गिरि गोवर्द्धन के भार को कुछ समझा ही नहीं, यद्यपि सब लोग जानते हैं कि यह भारी ही है ।

विशेष शब्दार्थ—भारक=भार; बोझा (भारक-भार, जैसे बालक बाल) । भारिह=भारी ही । जाय=इसको ।

न कीन दया-निध-याद स-तोस ।
सु-तासु न मानस में सनमान ॥ ३२ ॥

अन्वय—स-तोस दयानिधि-याद न कीन, न सु-तासु मानस में सनमान (है) ।

भावार्थ—सन्तोष-सहित दया के कोष श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं किया, न मन में उनके प्रति सम्मान ही रक्खा ।

सरासर चोरत चेत हमार ।
नहीं यम—आनद-नंदन सेव ॥ ३३ ॥

अन्वय—हमार चेत सरासर चोरत । आनद-नंदन सेव; यम नहीं ।

भावार्थ—(श्रीराम जी) हमारे चित्त को सरासर चुराते हैं। आनन्द-द्वारा प्रसन्न करने वाले ऐसे श्रीराम जी की सेवा करो, तो यम का भय नहीं रहेगा ।

विशेष शब्दार्थ—चेत=चित्त । आनद-नंदन = आनन्द के द्वारा प्रसन्न करने वाले । सेव = सेवा करो ।

पगो रवरो सनमान सु-हीय ।
सुपासुहिं लेहिं यती तव नाम ॥ ३४ ॥

अन्वय—रवरो सनमान सु-हीय पगो (है) । यती तव नाम सुपासुहि लेहिं ।

भावार्थ—(हे राम जी) आपका सम्मान अच्छे हृदय में पगा हुआ है । यती-लोग आपका नाम चैन के साथ लेते हैं ।

विशेष शब्दार्थ—रवरो (रावरो)=आपका । सु-हीय = जिन लोगों का अच्छा हृदय है (ऐसे महात्माओं के उस अच्छे हृदय में) सुपासुहि = आराम के साथ । तव = तुम्हारा ।

'रमाहत'-चेत रचो रस-रास ।
वसे नद-नंदन आमय-हीन ॥ ३४ ॥

विषय—रास ।

अन्वय—रमाहत-चेत रस-रास रचो । आमय-हीन नद-नंदन वसे ।

भावार्थ—श्रीलक्ष्मी-रूपा राधाजी के द्वारा आहत चित्त वाले श्रीकृष्ण ने रस-रास रचा । ऐसे निष्पाप नन्द-नन्दन हृदय में बस-गये हैं ।

विशेष शब्दार्थ—रमा=श्री लक्ष्मी (प्रस्तुतार्थ—श्री राधा) आमय-हीन=पाप-रहित; रोग-रहित, अर्थात् स्वस्थ ।

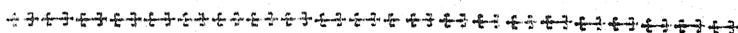
यहीं, सुन, 'मान-सरोवर' 'गोप' ।
मनावत 'तीयहिं' लेहिं सुपासु ॥ ३४ ॥

विषय—"मान-लीला"

अन्वय—सुन, यहीं 'मान-सरोवर' गोप (हैं), (वे) 'तीयहि'-मनावत सुपासु लेहिं ।

भावार्थ—हे सखी ! सुन, यहीं 'मान-सरोवर' पर गोपाल हैं । वे वहाँ अपनी प्रिया राधा को मनाने में चैन ले-रहे हैं ।

विशेष शब्दार्थ—तीयहिं=स्त्री को (प्र०—श्रीराधा को) । 'मान-सरोवर'—वह सरोवर, जहाँ श्रीराधा जी ने मान किया था (व्रज-भूमि में है) ।



रक्षा यह सो कर, तारक-आदि !
रमा जग तू, नर-तारनहार ! ॥ ३५ ॥

अन्वय—सो (हे) आदि-तारक ! यह रक्षा कर । (हे) नर-तारन-हार ! तू जग रमा (है) ।

भावार्थ—सो, हे जगत् के आदि-तारक ! तुम इस संसार की रक्षा करो । हे मनुष्यों के तारने वाले ! तुम संसार में रमे हुए हो ।

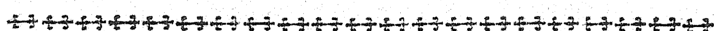
विशेष शब्दार्थ—रक्षा = रक्षा । रमा = व्याप्त ।

लखे, रसु सों, सुर, सो विभु-खेल ।
मनावत वे तव नामइ गाय ॥ ३६ ॥

अन्वय—सुर, रस सों, सो विभु-खेल लखे; वे तव नामइ गाय, मनावत ।

भावार्थ—देवताओं ने चाव के साथ, प्रभो ! तुम्हारे वे खेल देखे । वे देवता लोग तुम्हारे नाम को गाकर तुम्हें मनाते हैं ।

विशेष शब्दार्थ—रस-सों = चाव के साथ ।



दिश्रा-कर, 'तारक' ! सो 'हय' छार।
रहा, नर-तारन ! तू'गज' मार ॥३५॥

विषय—'केशी' तथा 'कुवलयापीड' का वध।

अन्वय—(हे) तारक ! सो 'हय' छार कर-दिया। (हे) नर-तारन ! तू 'गज' मार-रहा।

भावार्थ—(हे) तारक ! उस केशी नामक घोड़े को तूने छार कर-दिया। हे मनुष्यों को तारने वाले ! तूने 'कुवलयापीड नामक हाथी को भी मार डाला।

लखे, भुवि, सो रसु-सौं, सुर खेल ।
य, गाइ मनावत, वे तव नाम ॥३६॥

अन्वय—सुर, रस सौं सो भुवि खेल लखे। वे य तव नाम गाइ मनावत।

भावार्थ—देवताओं ने चाव से वे पृथ्वी पर होने वाली (श्रीकृष्ण की) सब लीलायें देखीं। हे भगवन् ! वे देवता तुम्हारे इस नाम को गाकर तुम्हें मनाते हैं।

"सुरेसुत्र" नें 'घट-कानउ' नासु ।
सुरार 'सुलोचनि-काँत' रहो न ॥३७॥

विषय—'कुम्भकर्ण' तथा 'मेघनाद' का वध ।

अन्वय—सुरेसुत्र ने 'घट-कानउ' नासु । सुरारि 'सुलोचनि काँत', रहो न ॥

भावार्थ—सुरेश्वर श्रीरामचन्द्र जी ने ही 'कुम्भकर्ण' का विनाश कर-दिया । देवताओं का शत्रु, 'सुलोचना' का पति 'मेघनाद' भी जीवित नहीं रहा ।

विशेष शब्दार्थ—सुरेसुत्र ने=सुरेश्वर ने ही । 'घट-कान'=कुम्भ-कर्ण । सुरार (सुरारि)=देवताओं का शत्रु । सुलोचनि=सुलोचना (मेघनाद की पत्नी) । काँत (कान्त)=पति ।

स-केलि दरो 'दसकंठ' स-भीत ।
अली य हिता 'पिय' नें सिय लीअ ॥३८॥

विषय—(१) रावण वध । (२) सीता-मिलन ।

अन्वय—सकेलि सभीत 'दसकंठ' दरो । हिता अली य सिय 'पिय' ने लीय ।

भावार्थ—श्रीराम जी ने खेल में ही (मन से) भयभीत 'रावण' को मार-डाला । फिर, हित रखने वाली सह-गामिनी यह सीता उसके 'पिय' (पति) श्रीराम ने अंगीकृत की ।

टिप्पणी—'अली यहि ता पिय नें सिय लीअ' । अर्थ—यह सहगा-मिनी सीता उस पति श्रीराम ने अंगीकृत की [यमकालंकार]

विशेष शब्दार्थ—केलि=खेल । दरो = मारदिया । अली य = यह सखी । लीअ (लीय) = ली; अंगीकृत की ।

सुना, उन काट घनें असुरेसु ।
न हो रत-काँनि, चलो 'सुर'-रासु ॥३७॥

अन्वयः—सुना, उन घनें असुरेसु काट । रत-कानि न हो, 'सुर'-रास चलो ॥

भावार्थ—हे सखी ! सुना जाता है कि उन श्री घनश्याम ने बहुत-से राक्षस-राज काट डाले । लज्जा में रत न होकर उन देवता जी का रास देखने को चलो ।

विशेष शब्दार्थ—घनें = बहुत-से । कानि = लज्जा ।

तभी सठ कंस दरो, दलि केस ।
अली ! 'यसि' नें य पिता हिय-लीय ॥३८॥

विषय—(१) कंस-वध । (२) वसुदेव-मिलन ।

अन्वय—तभी सठ कंस, केस दलि, दरो । (हे) अली ! 'यसि' नेंइ पिता हिय-लीय ।

भावार्थ—श्रीकृष्ण ने तभी दुष्ट कंस, केश खींचकर, मार-दिया । फिर, हे सखी ! उन्हीं यशस्वी ने अपने पिता वसुदेवजी, को हृदय में लिया (अर्थात्, उन्हें कारागार से मुक्त करके उनसे भेंट की) ।

विशेष शब्दार्थ—दरो = रोंदा (प्र०—मारा) । यसि = यशस्वी । नेय = ने ही ।



सहास सतीस रहे सब हेर ।
मनाइ-रहा गुन जासु 'सुरेसु' ॥३९॥

अन्वय—सतीस सब स-हास हेर-रहे । जासु गुन 'सुरेसु' मनाइ-रहा ।

भावार्थ—श्रीमहादेव जी यह सब चरित्र स-हर्ष देख-रहे थे, और, उन श्रीराम के गुणों को इन्द्र-देव भी मना-रहे थे ।

विशेष शब्दार्थ—स-हास = (प्र०) सहर्ष । जासु = (प्र०) उनके । सुरेसु = इन्द्र ।

अली ! यहि लील लुभाइँ महेस ।
रटे यहि 'सारद' मोद मनाय ॥४०॥

अन्वय—अली ! महेस यहि लीला लुभाइँ । सारद, मोद मनाय, यहि रटे ।

भावार्थ—हे सखी ! श्री शिवजी तो इस लीला से लुभा-गये, तथा श्री सरस्वती भी इस चरित्र को, आनन्द मनाकर, रटती हैं ।

विशेष शब्दार्थ—लील = लीला ।

रहे, बस, हेर सतीस स-हास ।
'सुरेसु'-सुजान गुहारइ नाम ॥३९॥

अन्वय—सतीस, बस, स-हास हेर-रहे । सुरेसु-सुजान नाम गुहारइ ।

भावार्थ—बस, श्री शिवजी, यह सभी लीला स-हर्ष देख रहे थे, तथा चतुर इन्द्र-देव उन श्रीकृष्ण के नाम को पुकार रहे थे ।

विशेष शब्दार्थ—गुहारइ = पुकारते (थे) ।

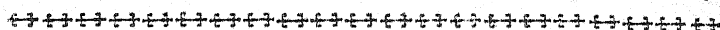
स-हेमइँ 'भालु-लली' हिय-लीअ ।
य नाम 'दमोदर'-सा हिय ! टेर ॥४०॥

विषय—जाम्बवती-विवाह ।

अन्वय—'भालु-लली' स-हेमइँ हिय-लीय । (हे) हिय ! य 'दमोदर'-सा नाम टेर ।

भावार्थ—श्रीकृष्ण ने जाम्बवान् की पुत्री जाम्बवती, स्वर्ण-सहित, अर्थात् अच्छे दहेज के साथ (जिसमें 'स्यमन्तकमणि' भी सम्मिलित थी) हृदय में ली अर्थात् पत्नी बनाई ।

विशेष शब्दार्थ—हेम = सोना (प्र०-'स्यमन्तक'-मणि, स्वर्ण आदि दहेज़) ।



लहा विभु ये 'अवधासन'-मान ।
स–तोसहि याहि लखो हिय खोल ॥४१॥

विषय—राज्याभिषेक ।

अन्वय—ये विभु, 'अवधासन'-मान लहा । याहि, हिय खोल, स-तोसहि लखो ।

भावार्थ—इन प्रभु श्रीराम ने अयोध्या के राज्यासन का सम्मान प्राप्त किया । इन विभु को हृदय खोल कर सन्तोष से देखो ।

विशेष शब्दार्थ—'अवधासन' = अयोध्या का राज्यासन । मान = सम्मान । लहा = प्राप्त–किया ! याहि = इसको (प्र० इनको) ।

* ('तूणक'–छन्द)

है रसा असार ये; सुरेसु 'राम' सार–सा ।
है रहा–निहार सो, सकास, दास को सदा ॥४२॥

अन्वय—ये रसा असार है; सुरेस 'राम' सार–सा (है); सो दास को सदा सकास निहार–रहा है ।

भावार्थ—ये संसार असार है तथा सुरेश्वर राम ही सार–रूप है । वह निज दास को, सदा समीप रह कर, देख–रहा है ।

विशेष शब्दार्थ—रसा = पृथ्वी; (प्र०) संसार । सकास = समीप ।

* लक्षण—र+ ज+ र+ ज+ र ।



न, मानस ! धाव, अये ! भुवि-हाल ।
लखो यहि खोल हियाहि स-तोस ॥ ४१ ॥

अन्वय—अये, मानस ! भुवि-हाल न धाव । यहि, हियाहि खोल, स-तोस लखो ।

भावार्थ—हे मन ! संसार के हाल पर ध्यान मत दे । इस संसार को हृदय खोल कर सन्तोष के साथ देख (कि, ये सर्वथा निःसार है, क्योंकि संसार की निःसारता सन्तोष होंने पर ही प्रतीत हो सकती है) ।

विशेष शब्दार्थ—धाव=दौड़ (प्र० ध्यान को दौड़ा) । भुवि-हाल न धाव पृथ्वी (प्र० संसार) की उलटी हालत पर ध्यान मत दे । यहि= इस संसार को ।

सार 'सामरा' सुरेसु; ये रसा असार है ।
दास को सदा, सकास, सो रहा-निहार है ॥ ४२ ॥

अन्वय—सुरेसु 'सामरा' सार (तथा) ये रसा असार है । सो दास को सदा सकास निहार-रहा है ।

भावार्थ—सुरेश्वर 'श्याम' ही सार तथा यह संसार असार है । वह निज भक्त को सदैव समीप से देख रहा है ।

विशेष शब्दार्थ—'सामरा' (साँवला; श्याम)=श्रीकृष्ण ।

चैन सों नच्चै, स-हास, हेर हीय में यही।
बैस ये सबै न खोइ, तू सु-तासु गान गा ॥ ४३ ॥

अन्वय—हीय में हेर—यही (राम) चैन सों स-हास नच्चै। ये सबै बैस न खोइ, तू सु-तासु गान गा।

भावार्थ—हृदय में देख, कि यही श्रीराम जी हर्ष-सहित, चैन के साथ, नृत्य कर-रहे हैं। यह सब आयु मत गँवा। तू उनके गुणों का गान गा।

विशेष शब्दार्थ—बैस (वयस) अवस्था। नच्चै=नृत्य कर-रहे हैं (यहाँ नृत्य का शाब्दिक अर्थ न लेकर केवल 'निवास कर रहे हैं' ही मान-लेना चाहिये)।

कालिका, सचीस, औ 'सुसेसु' हेरते-रहे।
तेउ नाम लै "सुरेसु" हीय सों मनाउते ॥ ४४ ॥

अन्वय—कालिका, सचीस औ सु-सेस हेरतेररहे (हैं)। तेउ 'सुरेसु' नाम लै, हीय सों मनावते।

भावार्थ—काली जी, इन्द्र-देव तथा शेष जी भी (इन्हें) देखा-करते हैं। वे भी इन सुरेश्वर श्रीराम जी का नाम लेकर उन्हें हृदय से मनाते हैं।

विशेष शब्दार्थ—सचीस (शचीश)=शची (इन्द्राणी) के पति, इन्द्र-देव।

हीय में यही रहे, सहास चैन सौं नचै।
गान गा सु-तासु तूइ, खो न बैस ये सबै॥ ४३॥

अन्वय—यही (कृष्ण) हीय में रहै; स-हास चैन सौं नचै; तूइ सु-तासु गान गा, ये सबै बैस न खो।

भावार्थ—यही श्री कृष्ण हृदय में विराजते हैं, जहाँ वे स-हर्ष चैन से नृत्य कर-रहे हैं (क्योंकि मानव-हृदय ही विश्व-व्यापी श्रीकृष्ण भगवान् का, क्रीड़ा-स्थल है)। तु उनका ही गुणगान कर। ये सब आयु मत खो।

हेरते-रहे 'सुसेसु' औ सचीस, कालिका।
तेउ नाम सौं यही 'सुरेसु' लै, मनाउते॥ ४४॥

अन्वय—सु-सेस, सचीस औ कालिका हेरते-रहे (हैं)। तेउ यही नाम सौं 'सुरेसु' लै मनावते।

भावार्थ—श्री शेष, श्री इन्द्र तथा श्रीकाली जी इन श्रीकृष्ण जी को देखते ही रहे हैं। वे भी यही श्रीकृष्ण-नाम लेकर इन सुरेश्वर को मनाते हैं।



लोभ सो भलो न है, न मान-सान को नसा।

रे बबा ! लखो, यही सतोस-लाभ है भला ॥ ४५ ॥

अन्वय—लोभ तो भलो न है, न मान-सान को नसा (भलो है) । रे बबा ! लखो, यही सो सतोस-लाभ भला है ।

भावार्थ—लोभ तो कभी भला है ही नहीं, न मान अथवा शान का नशा ही भला है । अरे बाबा ! देखो, यह सन्तोष-लाभ ही भला है ।

* ('समानिका' छन्द)—

काम का न, माइ ! सो,

कामना-पगोहि जो ।

लोभ-दास है सदा,

सो हिये न की दया ॥ ४६ ॥

अन्वय—(हे) माई ! सो काम का न, जो कामना-पगो हि; (जो) सदा लोभ-दास है (तथा) सो हिये दया न की ।

भावार्थ—हे माई ! वह मनुष्य काम का नहीं है, जो कामना में ही पगा-हुआ है; जो सदा लोभ का दास है, तथा जिसने दया भी नहीं की है ।

विशेष शब्दार्थ—सो=वह, उसने (प्र०) जिसने ।

* लक्षण—र+ ज+ ग ।

सान को न सान मान; है न लोभ सो भलो ।

लाभ है भला स-तोस--हीय खोल, बाबरे ॥ ४५ ॥

अन्वय—सान को सान न मान; लोभ सो भलो न है । स-तोस लाभ भला है—बाबरे ! हीय खोल ।

भावार्थ—शान को शान मत मान अर्थात् अपने प्रभुत्व पर अभिमान मत कर । लोभ तो भला है ही नहीं । सन्तोष के साथ जो लाभ हो, वही अच्छा है । ओ, बावले ! हृदय खोल ।

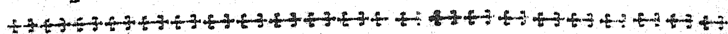
(‘समानिका’ छन्द)—

सोइ मान काम का,
जो हि ‘गोप’-नाम का—

दास है सदा भलो;
याद कीन येहि सो ॥ ४७ ॥

अन्वय—सोइ काम का मान, जो हि ‘गोप’-नाम का सदा भलो दास है; सो येहि याद कीन ।

भावार्थ—उसी को काम का मानो, जो कि ‘गोपाल’—नाम का श्रेष्ठ दास है, तथा जिसने वेही श्रीकृष्ण याद किये हैं ।



* ('मनोरम'-छन्द)—

रे बबा ! तन मान नाहक।
सार 'रामु' मना न टेरय ?
हीय में यहि हेर तारक;
'कीसु-ईसुहि' दास हो, यज ॥४८॥

अन्वय—रे बबा ! तन नाहक मान (अथवा) तनमान नाहक (है)। (तू) सार 'रामु' मना न टेरय ? यहि, तारक हीय में हेर। 'कीसु-ईसुहि', दास हो, यज।

भावार्थ—अरे बाबा ! शरीर को असत् मान (अथवा) शरीर का अभिमान असत्य है। तू सार-रूप श्रीराम को मन से नहीं टेरता ? इन तारने वाले रामजी को हृदय में देख। वानर (श्री हनुमान् जी) के ईश्वर श्रीरामचन्द्र जी महाराज की, सेवक बन कर, पूजा कर।

* लक्षण—र+ स+ ज+ ल।

* ('पीयूषवर्ष' छन्द)—

है रहा यहि-दास का, विभु ! तू हितू।
है रहा नर तार, वीर-सु-तीव्र तू ! ॥५०॥

अन्वय—(हे) विभु ! तू यहि-दास का हितू रहा है। हे सु-तीव्र वीर ! तू नर तार-रहा है।

भावार्थ—हे प्रभो। तू इस दास का हितकारी है। ओ तीखे वीर ! श्रीराम ! तू ही मनुष्यों को तार-रहा है।

विशेष शब्दार्थ—सु-तीव्र=सु-तीक्ष्ण।

* लक्षण—१९ मात्रा; अन्त में ।ऽ

* ('संयुत'-छन्द) :—

कहना न मानत, बाबरे !
य रटे न नाम 'मुरार'-सा ।
'करता' रहै हिय में यही—
"जय हो सदाहि सु-ईसकी" ॥४९॥

अन्वय—बाबरे ! कहना न मानत ! य 'मुरारि'-सा नाम न रटे ! यही 'करता' हिय में रहै । "सदाहि सु-ईस की जय हो !"

भावार्थ—ओ पागल ! तू कहना नहीं मानता ! यह मुरारि (श्रीकृष्ण)-सा नाम नहीं रटता ! यह जगत् के कर्त्ता हृदय में ही रहते हैं । इन श्रेष्ठ ईश्वर की सदा ही जय हो !

विशेष शब्दार्थ—य=यह ।

* लक्षण :—स+ज+ज+ग ।

('पीयूषवर्ष' छन्द)—

तू हितू भुवि का सदा हिय हार है ।
तू व्रती, सुर-वीर, तारनहार है ॥५०॥

अन्वय—तू भुवि का सदा हितू (तथा) हिय-हार है । तू व्रती, सुर-वीर तथा तारनहार है ।

भावार्थ—हे श्रीकृष्ण ! तू संसार का सदैव हितकारी तथा हृदय-हार है । तू व्रती, देवताओं में शूर तथा जगत् का तारक है ।

विशेष शब्दार्थ—भुवि=पृथ्वी; (प्र०) संसार । हिय-हार=(१) हृदय का हार (माला) अर्थात् अत्यन्त प्रिय; (२) हृदय का हरण-करने वाला (मनोहर) । व्रती=पक्के निश्चय वाला ।

—: शुद्धि-पत्र :—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	६	सवा	सदा
१०	१५	बधा	वध
२६	१६	सर में	सर सें
३५	२	३४	३३
४८	३	मना टेरय	मना न टेरब

छन्द सं० १८ को छन्द सं० २३ के वाद (छन्द सं० २४ के पहले) पढ़ें।

: सम्मतियाँ :



१—राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त लिखते हैं—

"बड़ा परिश्रम किया आपने। निःसन्देह आपका बुद्धि-विलास कौतूहल पूर्ण है। [२६—२—४४]

२—स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री डाक्टर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने लिखा है—

काव्य-कला-कुशल कविवर हृषीकेशजी चतुर्वेदी के श्रीराम-कृष्ण काव्य का अवलोकन किया। आद्योपान्त काव्य रसानुभव कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। काव्य चमत्कृति आश्चर्यजनक है। काव्य साहित्य के इस कलात्मक अङ्ग की ओर आपने ध्यान देकर साहित्य का उपकार किया है। कविवर केशव के आचार्यत्व से मुग्ध हुए साहित्य रसिकों को पण्डित हृषीकेश के इस छोटे से काव्य से कम आनन्द नहीं होगा। यमक-श्लेष की चमत्कृति को उपस्थित करना उतना कठिन कार्य नहीं है, जितना विलोम काव्य की रचना करना और वह भी संस्कृत में न होकर हिन्दी में। प्रसन्नता का विषय है कि आपने शब्दों के तोड़-मरोड़ की ओर भी उचित ध्यान दिया है। यद्यपि ऐसे काव्यों में यह कार्य असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है इस अभूतपूर्व सफलता पर चतुर्वेदीजी को हार्दिक आशीर्वाद एवं बधाई है। [२५ मार्च १६४४]

३—श्री० गुलाबरायजी एम० ए०, लिखते हैं :—

श्री हृषीकेशजी चतुर्वेदी ने अपना लिखा हुआ श्रीराम-कृष्ण काव्य दिखाने की कृपा की। यह पुस्तक शान्त-रस प्रधान है। इसमें राम और कृष्ण की अभेद रूप से प्रार्थनाएँ की गई हैं, प्रार्थनाओं के साथ उनके जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ भी हैं। एक ही छन्द को एक ओर से पढ़ने में कृष्ण-पक्ष में लागू होता है और दूसरी ओर के पढ़ने से वह राम-पक्ष में लागू होता है। बाईं ओर के पाठ में राम-पक्ष है, दाईं ओर के पाठ में कृष्ण-पक्ष है। संस्कृत में तो ऐसी चीज बहुत देखने में आई, हिन्दी के लिए यह नई चीज है। इस शाब्दिक चमत्कार के साथ पुस्तक में भाव का भी चमत्कार है। लेखक को इस कार्य पर बधाई है। छन्द प्रायः संस्कृत के हैं। साथ ही छन्दों की सरल टीका भी है। [१८ । ४ । ५४]

४—डॉ० श्री० रांगेयराघव एम० ए०, पी० ऐच० डी० लिखते हैं—

श्री हृषीकेश चतुर्वेदी ने आधुनिक संघर्षों के समय में गतशताब्दी के एक चमत्कार को अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। वस्तुतः यह चित्रकाव्य है किन्तु चित्रकाव्य होते हुए भी इसे अधम-काव्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें केवल कौतूहल की शान्ति नहीं हो जाती, वरन् बुद्धि को उनके भाषा के अधिकार से प्रभावित होकर भाषा की शक्ति पर विचार करने की प्रेरणा मिलती है। एक प्रकार से यह काव्य विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है जो काव्य की अनेक मंज़िलों में से एक का परिचय देता है। [१२–४–५४]

५—साहित्य-शास्त्री प्रो० श्री पं० जगन्नाथजी तिवारी एम० ए०, (सं० हि०) बी० ए० (ऑनर्स) हिन्दी-संस्कृत विभागाध्यक्ष, आगरा कॉलेज लिखते हैं :—

"......यह काव्य अपने ढंग का निराला है ।......इस काव्य की अन्य विशेषता यह है कि राम तथा कृष्ण के जीवन की घटनाओं में क्रम-बद्धता भी बनी रहती है। इसमें सन्देह नहीं कि इस कष्ट-साध्य कार्य में चतुर्वेदी जी को पूर्ण सफलता मिली है जिसे देखकर चकित हो जाना पड़ता है।......"

६—प्रो० श्री० पं० पद्मसिंहजी शर्मा "कमलेश", साहित्यरत्न, प्राध्यापक, आगरा कॉलेज, आगरा लिखते हैं :—

"......अपने ढंग की पहली चीज़ है।......हिन्दी में काव्य-शास्त्र के पंडितों के लिए यह आश्चर्य की वस्तु होगी और काव्य-प्रेमियों के लिए आनन्द तथा भक्ति की। इतनी संक्षिप्त प्रणाली होने होने पर भी काव्यत्व की हानि नहीं हो पाई है। निस्सन्देह चतुर्वेदी जी का यह प्रयत्न स्तुत्य है।"

हमारे—प्रकाशन

श्री पं० हृषीकेश चतुर्वेदी कृत—

१—विजया-वाटिका (हास्यात्मक काव्य) मूल्य ॥=)

२—श्रीराम-कृष्ण-काव्य (चित्र-काव्य) मूल्य ॥।)

३— श्रीकृष्ण-ताण्डव स्तोत्रम्—
(संस्कृत में श्रीशिवताण्डव स्तोत्रम् की अनुकृति) मू० =)

४—संयुक्त-वर्ण-विज्ञान ... ... मूल्य =)

श्री सतीशचन्द्र चतुर्वेदी 'प्रेमी' कृत—

खँडहर (उपन्यास) मूल्य—एक रुपया

— शीघ्र प्रकाशित होने वाली कृतियाँ —

श्लेष—यमक—मय काव्य—

श्रीराम-कृष्णायन

(लेखक—श्री० पं० हृषीकेश चतुर्वेदी)

उपन्यास—

मन—के—बन्धन

(लेखक—श्री० सतीशचन्द्र चतुर्वेदी 'प्रेमी')

(अध्यक्ष) 'रत्नदीप' प्रकाशन

चौबेजी का कटरा, किनारी बाजार, आगरा।